



## विषय- 21वीं सदी के हिन्दी निबंधकारों की संस्कृति संबंधी दृष्टि

मनप्रीत सिंह संधू

लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जालंधर, पंजाब, भारत

### सारांश

हमारे इस शोध पत्र का उद्देश्य है 21वीं सदी के निबंधकारों की संस्कृति संबंधी दृष्टि को विवेचित करना। वर्तमान में कुछ ऐसी स्थितियाँ पैदा हुई हैं जिसके कारण आज हमारे सांस्कृतिक मूल्यों का स्वरूप बदल चुका है इसमें बदलाव आ चुका है। इन स्थितियों को पैदा भी मानव ने ही किया है अपने स्वार्थ के लिए केवल काम करना केवल मात्र धन और अपने जीवन के प्रति अधिक आधुनिक होना ही इसका प्रमुख कारण है। इस तरह वर्तमान में निबंधों का अध्ययन करके इन समस्याओं पर विचार-विमर्श करके इनके निराकरण करने के लिए कार्य किया गया है। इस शोध पत्र में शोधार्थी इस निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास करेगा मानव चाहे व्यक्ति, चाहे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक कोई भी मूल्य अपनाए वे सम्पूर्ण मानवीय जाति एवं संतति को मान्य हों, जिससे समाज एवं विश्व के कल्याण को कोई चोट न लगे।

**मूल शब्द:** उद्देश्य, सांस्कृतिक, निबंधकारों, राजनीतिक

### प्रस्तावना

निबंध को योग्यता की कसौटी माना जाता है इसमें कलात्मकता और भावात्मकता दोनों ही उपेक्षित हैं। निबंध की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि एक ओर वह जहाँ यथार्थ भूत जीवन की व्याख्या करता है, वहाँ दूसरी ओर जीवन के निर्माण एवं उत्थान में भी सहायक होता है। साहित्य और भाषा की प्रौढ़ता पर ही निबंध कला का उद्भव और विकास संभव है। उच्चकोटि के निबंधों के आधार पर ही संसार के किसी साहित्य की श्रेष्ठता का मूल्यांकन किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल गद्य और निबंध के विकास का काल है।

संस्कृति शब्द की निष्पत्ति 'सम' उपसर्ग लगाकर 'कृ' धातु से स्त्रीलिंग के 'किव' लगाने से होती है। इसका शाब्दिक अर्थ है साफ़ करना या परिष्कृत करना। उसी से संस्कार, संस्कृत आदि शब्दों का निर्माण होता है। जिस समाज में मनुष्य जन्म लेता है, वहाँ का रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान संस्कृति की ही देन है। अगर मनुष्य से उसकी संस्कृति उससे छीन ली जाये तो उसके पास रह भी क्या जायेगा, वह एक पशु मात्र ही रह जायेगा। संस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहार अथवा उस व्यवहार

का नाम है जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है। इस प्रकार संस्कृति का अर्थ हुआ-शुद्ध किया हुआ, परिष्कृत एवं परिमार्जित करना। 'अशोक के फूल' निबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के अनुसार- "संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।" (द्विवेदी 70)

### समस्या कथन

"21वीं सदी के हिन्दी निबंधकारों की संस्कृति संबंधी दृष्टि" हमारे इस शोध पत्र का समस्या कथन है। निबंधकारों ने अपने समय की स्थितियों को अपनी लेखनी में व्यक्त किया है और वर्तमान की समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए यह बहुत बड़ा उपादान है। साहित्य से हमें बहुत ज्ञान प्राप्त होता है जिससे हम अपने समाज में एक अच्छे जीवन का निर्माण करते हैं। और यह सफल भी होता है क्योंकि हम ज्ञान साहित्य से प्राप्त करते हैं।

### उद्देश्य

कोई भी कार्य करने के लिए हमारा एक उद्देश्य होता है। इस

शोध पत्र में भी हमारे कुछ उद्देश्य हैं जिनको आधार बनाकर एक सफल कार्य किया जा रहा है जो हमारे सामाजिक विकास के लिए उपयोग किया जा सकता है। इस शोध पत्र के उद्देश्य निम्न हैं –

- वर्तमान समय में हिन्दी निबंधकारों द्वारा सांस्कृतिक मूल्यों के बदलते परिप्रेक्ष्य में किए गये प्रयासों की पहचान करना ।
- वर्तमान निबंधकारों की संस्कृति संबंधी दृष्टि से समयानुकूल प्रत्यावर्तित स्वरूप की अर्थवत्ता को प्रत्यक्ष करना ।
- बदलते जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में सांस्कृतिक चेतना और उसके महत्व को रेखांकित करना ।

## लोकजीवन

साहित्य और लोक का एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है। साहित्य बिना लोक की उपस्थिति के रचा नहीं जाता यदि रचा भी जाता है तो उसका जीवन की चेतना से कोई संबंध नहीं होगा। लोकचेतना लोक की चेतना है। उस लोक की, जो ग्रामीण अंचल में निवास करता है और जीवन के विविध क्रिया कलापों में संलग्न रहता है। वर्तमान में डॉ. श्यामसुंदर दुबे जी ने लोक संस्कृति लोकजीवन पर अपने निबंधों में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, जिसमें लोक की परम्परा का हमें पता चलता है। उनके निबंधों में लोक के द्वारा किये जाने वाले क्रिया- कलापों में लोक जीवन का स्वरूप दिखाई देता है। लोकजीवन की संरचना में जो क्रियाकलाप परंपरा या आधुनिकता से चले आ रहे हैं, उनमें लोकोत्सव, लोकरुद्धियाँ, लोकविश्वास, व्यक्ति की जिजीविषा को पोषित करनेवाले विचार, आस्थाएँ, अनास्थाएँ, अभिरुचियाँ तथा लोक की जीवन शैली का प्रमुख रूप से योग रहता है। लोकचेतना का निर्माण करने में लोकोत्सवों की भूमिका प्रमुख रही है।

दुबे जी ने अपने निबंधों में आज बढ़ती नगरीकरण की प्रवृत्ति के कारण लोकोत्सवों की महत्वपूर्ण झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। आपने प्रमुख रूप से बुंदेलखंड के लोकोत्सव का स्मरण किया है। बुंदेलखंड के इन लोकोत्सवों के द्वारा लोकचेतना को जगाने का प्रमुख रूप से काम किया है। आपने शरद ऋतु में मनाए जानेवाले उत्सव शरद पूर्णिमा, वसंत तथा होली पर होने वाले

उत्सवों के बारे में गीतों तथा आलेखों के रूप में विस्तार से लिखा है। फागुनी संध्या का राधा-भाव, फागुन की एक शाम, वसंत की एक नई भंगिमा, फागुन के रंग और मेरा गाँव, फगुनौरी हवा के दिन, वसंत जब पिघलता है, होली की आंच में, मेरा कवि मन, वसंत कहीं खो गया है आदि निबंध वसंत के लोकोत्सव से संबंधित हैं। उसी प्रकार शरद कुबेर स्मरण और पितृपूजन, शरद पूर्णिमा : महारास की रसनिष्पत्ति तथा शरद आचरण का विशद भाव जैसे निबंध शरद ऋतु में होने वाले उत्सवों के वर्णन में डॉ. श्यामसुंदर दुबे ने लोकचेतना को दर्शाया है।

‘कालमृगया’ निबंध संग्रह में संकलित निबंध ऋतु पावस नियरानी में डॉ. दुबे जी ने वसंत ऋतु का आख्यान अनेक निबंधों में विस्तार से बनाकर उस पर प्रकाश डाला है- “नीली अलसी, पीली सरसों, लाल गुलमोहर, हरा गेहूँ न जाने ऐसे कितने रंगों में यह विहँसता है। झाबुआ के झील जैसी पाग बाँध पलाश, डाल-डाल में रोमांच भरे आम्रवृक्ष और पात-पात हो नई तराश देता यह वसंत न जाने कितने रूपों में सँवरता है। झीने दुपट्टे सी सरसराती गंधवती हवा के ताजे झोंके सा स्पर्श, अशोक को पादप्रहार से धन्य करती कामनियों के नुपुर और चंचरीकों की मंगल-ध्वनियों की धमार का यह संगीत पर्व है।” (दुबे 24) ऋतुओं और मानव-जीवन का एक-दूसरे के साथ गहरा संबंध रहा है। इस देश में ऋतुओं का महत्व बहुत ही प्राचीनकाल से रहा है। लोकजीवन ऋतुओं के अनुसार अपनी रुचियाँ, अपनी जीवन शैली और व्यवहार आदि में बदलाव करता रहता है। यह परिवर्तन लोकजीवन का द्योतक है। दुबे जी ने ऋतुओं की भावना में लोकजीवन की आंतरिक छवि निरूपित की है।

लोकजीवन में ऋतुएँ जीवनचक्र का ही एक हिस्सा हैं। लोक का खुलापन पाकर और ऋतुओं से साझेदारी करके ही जीवन का विस्तार और निस्तार संभव होता है। यह वजह है कि लोक का ऋतु चिंतन जड़ प्रकृति चितधर्मिता से अधिक मानवीय चेतना के गतिशील जीवंत बिंबों की कैमिस्ट्री में ही सम्पन्न है। इस तरह यहाँ स्पष्ट होता है वसंत ऋतु की मादकता के चित्रण में लोकजीवन की सहज छवि देखने योग्य है।

## ग्रामीण एवं शहरी संस्कृति

गाँव हमारे देश की रीढ़ है, जो देश की आधारशिला रखते हैं। जैसे किसी मजबूत ईमारत को बनाने की बात करें तो सर्वप्रथम

उसकी बुनियाद मजबूत बनाई जाती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है देश की बुनियाद कठोर करने के लिए तथा उसका सम्पूर्ण विकास करने के लिए ग्रामीण संरचना को प्राथमिकता देनी चाहिए। अर्थात् ग्रामीण क्षेत्रों को विकास की लहर में जोड़ना चाहिए। दूसरी और यदि वर्तमान परिप्रेक्ष्य की बात करें तो पिछले दशकों से ग्रामीण क्षेत्रों से हो रहे प्रवास में अधिकता पाई गई है, जो समय के साथ-साथ पूर्ण प्रवास अर्थात् पलायन में तब्दील हो रही है। परिणामस्वरूप कई नकारात्मक तथ्य वर्तमान में हमारे समक्ष आ रहे हैं। जिसमें गाँव का लुप्त होना मुख्य पाया गया है। हालाँकि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रवास और पलायन बड़ रहा है। इस बात का हमें ग्रामीण क्षेत्रों से प्राप्त आंकड़ों से पता चलता है।

गाँव के लोग अपने जीवन यापन के लिए कृषि या अन्य पारंपरिक उद्योगों पर निर्भर करते हैं। गाँवों में शहरों की अपेक्षा कम सुविधाएँ एवं संसाधन उपलब्ध होते हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन कृषि पर आधारित है, कृषि ही लोगों का प्रमुख व्यवसाय है। गाँवों में संयुक्त परिवार अधिक देखने को मिलते हैं, जहाँ शहरों में लोग जाति भेद-भाव को छोड़कर बहुत आगे बड़ चुके हैं वहीं ग्रामीण लोग आज भी इन बातों को महत्व देते हैं जो बहुत गलत है। कुछ पहलू ऐसे आज हैं जो गाँव में अपनी संस्कृति को बनाए रखे हैं जो शहरों में नहीं मिलते लेकिन कुछ ऐसे अन्धविश्वास भी हैं जो आज भी उन्हें आगे नहीं आने देते। अगर देखा जाये तो गाँव में जो किसान काम करता है हमारे लिए भोजन उगाता है वह अपने लिए ढंग से दो वक्त की रोटी नहीं जुटा पाता। आजकल समय के साथ लोगों की धारणा बदल रही है, लोग गाँवों से शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। गाँव के लोग ग्रामीण सुविधा से तंग आकर शहरी सुविधा से आकर्षित हो रहे हैं। पहले जमाने में गाँव के लोग आपस में काफी मिलजुल कर रहा करते थे।

लेकिन अब समय बदल चुका है अब गाँव में आत्मनिर्भरता की कमी होती जा रही है, गाँवों में गरीबी बढ़ती जा रही है, किसानों का काम करने के लिए मजदूर कम पड़ते जा रहे हैं, किसानों का कर्ज बढ़ता जा रहा है। इसलिए आज गाँवों की संस्कृति में बदलाव आ रहा है, गाँव के लोगों को खेती का सही मूल्य नहीं मिलने के कारण आज वह अपने बच्चों को पढ़ा-लिखा कर गाँवों से दूर करना चाहते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में कम सुविधाओं के कारण अधिक लोग शिक्षित नहीं हैं इसलिए गाँव में भी आज

सुविधाओं का होना आवश्यक है ताकि लोग पढ़े लिखे हों और गाँव के विकास में अपना योगदान करें। आज हर व्यक्ति सुविधा चाहता है, और यह सत्य है कि गाँवों में शहरों की अपेक्षा सुविधाएँ नाम मात्र ही हैं। शिक्षा विकास का एकमात्र साधन है, जो की गाँवों में अधिक मौजूद नहीं है। आज भी गाँवों में कई जगह पर अच्छे स्कूल नहीं हैं जो है भी उनमें शिक्षा का स्तर अच्छा नहीं है।

गाँव के लोगों को परिवहन के लिए भी समस्याओं से जूझना पड़ता है गाँवों में शहरों की तरह परिवहन की सुविधाएँ नहीं हैं। वर्तमान में बहुत से बदलाव आ चुके हैं जो ग्रामीण सभ्यता को प्रभावित कर रहे हैं। पहले समय में लोग एक साथ मिलजुल कर रहते थे, सभी तीज त्यौहार एक साथ गाँव में मिलकर मनाए जाते थे, लेकिन आज तो गाँव से पलायन हो रहा है लोग आज बहुत प्रवास कर रहे हैं गाँव से और गाँव की संस्कृति जिससे प्रभावित हो रही है।

अब बात करेंगे पुरातन समय में ग्रामीण जीवन के कुछ लाभ की उस समय में ग्रामीण क्षेत्रों का वातावरण शहरों की अपेक्षा शुद्ध था वहाँ पर शहरी प्रदूषण से मुक्त शुद्ध हवा पानी उपलब्ध था। उस समय ग्रामीण क्षेत्रों में शहरों की अपेक्षा वाहनों से निकलने वाला धुआं नहीं था और ना ही डीजे का शोर, लेकिन आज यह संदर्भ बहुत बदल चुका है आज यह सब कुछ हो रहा है। उस समय के लोग कूलर पंखे के बिना ताज़ी हवा लेना पसंद करते थे और विदेशी पेय से दूर शुद्ध पेय जैसे- लस्सी, दही, शिकंजी और घरेलू वस्तुएँ पसंद करते थे। इसी तरह गाँव के लोग खुद खेती करते थे, गाय भैस पालते थे तो वह अपने लिए बिना रसायन के उपयोग किये अनाज, सब्जी आदि का प्रयोग करते थे। यहाँ पर शहरों के लोग पैक्ट के दूध का इस्तेमाल करते थे वहीं गाँव के लोग गाय भैस का शुद्ध दूध पीते थे और घर पर ही खाने के अन्य पदार्थ दूध से बनाते थे।

इसी तरह अगर हम त्यौहारों की बात यहाँ पर करें तो शहरों के लोग दिनभर की दौड़ धूप से तंग आकर त्यौहारों का सही आनंद नहीं ले पाते, वहीं गाँवों के लोग हर एक त्यौहार को पूरे उत्साह के साथ एकजुट होकर मनाते थे। पहले कहा करते थे कि त्यौहार केवल अब गाँव तक ही सीमित रह गये हैं लेकिन अब तो गाँव में भी लोगों में आधुनिकता आ चुकी है पहले की तरह लोक एकजुट नहीं है त्यौहारों का महत्व घटता जा रहा है। पहले गाँव के लोगों में भाईचारे की भावना मौजूद थी वहाँ लोग एक दूसरे के साथ परिवार की तरह रहते थे। वह लोग सदैव एक

दूसरे की सहायता के लिए तत्पर रहते थे लेकिन वर्तमान में ऐसी भावना बहुत कम देखने को मिलती है। निश्चित रूप में गाँवों और शहरों के लोगों की जीवन शैली में बहुत बड़ा अंतर है। आज समय है कि दोनों की जीवन शैलियों में एक दूसरे के अच्छे पहलुओं को शामिल करके संतुलन स्थापित किये जाने की आज आवश्यकता है। भारत की अधिकतर जनसंख्या गाँव में रहती है लेकिन समय के साथ-साथ लोग शहरों की तरफ आकर्षित हुए हैं अपना जीवन अधिक पुष्पित और पल्लवित बनाने के लिए।

इसी तरह की चिंता को लेकर डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र जी ने अपने निबंध संग्रह 'अराजक उल्लास में संकलित निबंध 'मकान उठ रहे हैं' में कहा है कि- "जैसे जैसे गाँव में भोग सुविधाएँ बढ़ रही हैं, गाँववालों का गाँव से मन उचट रहा है। यह दुर्भाग्य की हद है कि गाँव की संतान का अपनी जन्मभूमि से मन फट रहा है। क्या कारण है कि शहरी सुविधा से सम्पन्न होते अपने गाँव से नाता तोड़कर लोग शहरों की ओर भाग रहे हैं? मुझे लगता है और मेरे गाँव के रामनरेश जी भी बताते हैं कि गाँव की रहनी बहुत बिगड़ गई है, वह शहर का नकलची बन गया है। आदमी और आदमी को माँ की तरह एक संवेदना सूत्र में बाँधे रहनेवाले गाँव में दोगली बयार बहने लगी है। सुरक्षा और भाव-पोषण का आश्वासन कमजोर हो गया है। धरती, माँ, और अपने टोल-पड़ोस, घर-आँगन के लोगों से कृत्रिम, सुचिक्कन, किन्तु निहायत अनात्मीय मुद्रा में व्यवहार करना गाँवई संस्कार के प्रतिकूल है। मगर यही प्रतिकूल व्यवहार शैली आज गाँवों में क्रियाशील है।" (मिश्र 53)

मिश्र जी के इन निबंधों में भाषा का लालित्य नहीं, आंचलिक जीवन से रागात्मक सम्बन्ध की समृद्धता ही उनका असल स्रोत है। उनके इस राग-बन्ध में कहीं भावुकता नहीं है ग्रामांचल के प्रति कृष्ण बिहारी मिश्र जी का जो ममत्व है वह उन्हें उस जीवन की वर्तमान कमियों और कमजोरियों को अनदेखा करने की छूट नहीं देता। बल्कि समग्रता का जो सूत्र ग्राम समाज के जीवन को अर्थवता देता था उसे वह टूटता हुआ देख रहे हैं और उससे दुखी हैं इसका दर्द बार बार उनके ललित निबंधों में मिलता है। मिश्र जी ने ग्राम में रहते हुए ग्रामीण जीवन का अच्छे से अनुभव किया है और उनके निबंध ग्रामीण जीवन की ही दिशा और दशा को प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने अपने जीवन की कुछ अनुभवी घटनाओं को लेकर भी अपने संग्रह में निबंधों की

रचना की है जो ग्रामीण और शहरों के जीवन को प्रस्तुत करती हैं।

मिश्र जी ने अपने निबंध संग्रह 'अराजक उल्लास में कहा है कि- "आज के गाँव ने अपना मूल धरातल छोड़ दिया है। इसलिए तमस अपने डरावने रूप में खेत-खलिहान, आँगन-बगीचे और राह-घाट में हर क्षण चीत्कार करता रहता है। आज अपने ही गाँव को पहचानना कठिन काम हो गया है। आज अपनी ही माटी परायी लगती है। भारत के गाँवों में ग्राम्य संस्कृति संवेदना जैसे सदा के लिए मर गई है और गाँव के आँगन खेत बगीचे में व्यवसाय सभ्यता अपनी सबसे अन्तरंग बान्धवी उपभोक्ता सभ्यता को साथ लेकर उद्दाम अक्षील मुद्रा में नाचने लगी है। आज का गाँव सूचना सभ्यता के प्रति बेहद सतृष्ण हो गया है।" (मिश्र 15)

गाँव भारतीय संस्कृति और विरासत का दर्पण हैं, वहाँ भारत की सदियों पुरानी परम्पराएँ कहीं आज भी जीवित हैं और कई जगह पर आज आधुनिकता के दौर में बदलाव भी आ रहे हैं। गाँव के लोगों का व्यवहार बहुत अच्छा होता था वह अपने अतिथियों का बहुत गर्मजोशी से स्वागत करते थे लेकिन समय के चलते आज सभी लोग बाजारवाद की लपेट में आ रहे हैं। जो लोग गाँव में विकसित हो चुके हैं वह गाँव में रहना पसंद नहीं करते वह प्रवास कर रहे हैं जिनको अपने गाँवों का विकास करना चाहिए जिनसे हमारी ऐसी अपेक्षा थी इसलिए गाँव का दौर बदल रहा है। जो लोग भारत के गाँवों में अशिक्षित हैं वह आज भी बहुत से अन्धविश्वास पर अपना जीवन बता रहे हैं इसलिए ग्रामीण संस्कृति और सभ्यता और हमारे संस्कार आज खंडित हो रहे हैं, पहले जैसा गर्व आज संस्कृति या हमारे संस्कारों पर नहीं है। वहीं दूसरी ओर शहरों में लोग वक्त की कमी से हमेशा जूझते हैं, यहाँ पर कार्य काफी तेजी से करना होता है उनके जीवन में कोई उत्साह नहीं होता है। शहरी निवासियों को अपने मित्रों, पड़ोसियों, रिश्तेदारों यहाँ तक कि अपने परिवार के सदस्य के लिए भी काफी समय नहीं होता है। गाँवों और शहरों के जीवन में अपनी-अपनी समस्याएँ हैं। कई गाँवों में भी शिक्षा, रोजगार, स्वस्थ, परिवहन और बिजली जैसे बुनियादी सुविधाओं का भी अभाव है। आज जो स्थिति गाँव और शहर में देखने को मिलती है उसके आधार पर हम यही कहना चाहते हैं कि हम चाहे गाँव में रहे या शहर में हमें अपने जीवन में सही संतुलन और उद्देश्य को स्थापित करने की

आज आवश्यकता है जो यहाँ पर हमारा ग्रामीण और शहरी संस्कृति को लेकर हमारा उद्देश्य है।

गाँवों में ज्यादातर लोगों की जिंदगी कृषि पर निर्भर रहती है। ज्यादातर ग्रामीण किसान ही होते हैं। किसान जब सुबह सुबह उगते हुए सूरज के साथ अपने खेतों में हल चलाते हैं पशियों और बैलों की आवाज के साथ जुड़कर कड़ी मेहनत का राग गुनगुनाता हुआ महसूस होता है। आर्थिक असमानता, प्रदूषण और कचरे के ढेर शहरी जीवन के अभिशाप हैं, फिर भी लोग शहरों में रहते हैं, क्योंकि वहाँ उन्हें अच्छी शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन और आराम एवं मनोरंजन के साधन उपलब्ध होते हैं। लाभप्रद रोजगार के अच्छे अवसर भी लोगों को गाँवों की अपेक्षा शहरों में अधिक प्राप्त होते हैं। इस प्रकार गाँवों और शहरों का जीवन दो परस्पर विरोधी चित्रों को प्रस्तुत करता है। दोनों के ही सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलू हैं और यह व्यक्ति विशेष पर निर्भर करता है कि वह ग्रामीण या शहरी किसी भी जीवन के माहौल में रहते हुए नकारात्मक पहलुओं की प्रवाह किये बगैर उपलब्ध अवसरों का अधिक से अधिक लाभ कैसे उठाएँ।

वर्तमान के निबंधकारों में डॉ. रामदरश मिश्र जी ने भी अपने निबंधों में ग्रामीण संस्कृति और शहरी संस्कृति को लेकर अपने भाव और विचार व्यक्त किये हैं। मिश्र जी के निबंधों में व्यक्त होने वाले संवेदन या चिन्तन का महत्व इस बात में है कि वह उनके निजी अनुभवों का निचोड़ है। वह उनके व्यक्तित्व की निजता को लेकर प्रकट हुआ है। हर जगह अपनी रुची-अरुचि, इच्छा-अनिच्छा, स्वीकृति-अस्वीकृति के साथ लेखक मिलता है। उनके ललित निबंधों में समय के साथ जुड़े विषयों और संवेदनाओं की यात्रा करते हैं। वह चाहे किसी विषय पर लिखे गये हों, अपनी जमीन से जुड़ी हुई सोच और संवेदना के साथ चलते रहते हैं। गाँव से लेकर शहर तक की इस यात्रा में सामान्य जीवन की छवियाँ और प्रश्न लेखक को प्रभावित तो करते ही हैं, साथ ही वहाँ के छोटे-छोटे सुख ही उन्हें वास्तविक सुख प्रतीत होते हैं। अपने गाँव की स्मृतियों, पर्व-त्यौहारों, ऋतुओं आम जन के जीवन व्यवहारों के बीच वह अपने-आप को पाना चाहते हैं। जहाँ कहीं वह विविध प्रसंगों के चित्रण की प्रक्रिया में राष्ट्र और समाज के अनेक प्रश्नों से गुजरते हैं तो उनकी प्रगतिशील दृष्टि सहज रूप से ही सड़े-गले मूल्यों का निषेध करती है और उनमें नये मनुष्य को प्रस्तावित करने वाले मूल्यों की पक्षधरता दिखाई देती है।

डॉ. रामदरश मिश्र जी ने अपने निबंध संग्रह 'छोटे-छोटे सुख' में संकलित निबंध 'मेरे जाने के बाद' में अपने शहर जाने के बाद गाँव की स्मृति को याद किया और उसका अनुभव करते हुए वह कहते हैं- "गाँव की यह गलियाँ, ताल पोखरे, रस्ते, कच्ची सड़के, बाग बगीचे, खेत-खलिहान सभी तो दीख रहे हैं उदास-उदास से। मेरे होने में इनका होना कितनी गहराई से धँसा हुआ है। कितने-कितने अनुभवों की स्मृतियाँ जुड़ी हैं। इतने लम्बे अरसे तक इनसे दूर रहने पर भी क्या यह दूर हुए, यह तो और भी भीतर धँसते चले गए। लगता रहा है कि मैं अभी भी उनके बीच हूँ, उसी तरह गलियों में गोली खेलता हुआ ताल पोखरों में मस्त नहाता हुआ, पानी के खेल खेलता हुआ, रास्तों और कच्ची सड़कों की धूल में पाँव धँसाकर चलता हुआ, और उनसे होकर कहाँ-कहाँ जाता हुआ, तमाम मौसमों में तरह-तरह के खेतों के साथ होता हुआ, खलिहानों में अनाज दांता हुआ आसपास के लोगों को गीत सुनाता हुआ। और बाग-बगीचों के ये पेड़ सभी तो दोस्त थे।" (मिश्र 122) इस तरह हमने देखा है कि वर्तमान के निबंधकारों ने भी अपनी लेखनी में ग्रामीण संस्कृति और शहरी संस्कृति को लेकर हमें आज परिचित करवाया है जिनमें ग्रामीण और शहरी लोगों के जीवन के सकारात्मक पक्ष खुलते से प्रतीत होते हैं जिनका उपयोग आज हम समझकर समाज के विकास के लिए कर सकते हैं। वर्तमान निबंधों में नवीन मार्ग खुल रहे हैं जिसको हमें समझना और समझाना है ताकि आने वाले समय में लोग इन सभी बातों से अच्छे से परिचित हों और अपने विकास के लिए इसका प्रयोग करके वह एक अच्छा जीवन बतीत करें वह चाहे ग्राम में रहें या फिर शहर में रहें। ग्रामीण और शहरी जीवन में बहुत सी असमानता है जो ऊपर हमने विचार किया उससे यह साफ़ पता चलता है इसलिए सभी को अपना-अपना सकारात्मक पक्ष लेकर आज शिक्षित होना है इन समस्याओं को दूर करना है तभी इनसे छुटकारा मिल सकता है।

### उपसंहार

मानव जीवन के क्रिया कलाप, आहार-विहार, चिंतन-मनन, अचार-विचार आदि विशिष्ट क्रियाएँ संस्कृति का धात्वर्थ है। संस्कृति किसी जाति या देश की आत्मा है। इसी तरह मानव जीवन में सदैव परिवर्तन आते रहते हैं, मानव जीवन के सत्यम, शिवम और सुंदर जीवन के लिए सदैव प्रयास किये जाते रहे हैं। मानव के द्वारा हमेशा कुछ नया खोजने का प्रयास किया जाता रहा है, प्रस्तुत शोध पत्र में भी शोधकर्ता के द्वारा ऐसा ही मंगलमई प्रयास किया जायेगा, जिससे समाज और मानव

व्यवहार में विकासमय पथ प्रशस्त हो सके। आज भारत की सांस्कृतिक विविधता को संपन्नता के स्रोत के रूप में समझने समझाने की जरूरत है जिसका उपयोग समाज के विकास में किया जाये। वर्तमान समय में बदलाव आ चुका है हमारा मानव जीवन बहुत सी समस्याओं में घिरा हुआ है। इन समस्याओं को आधार बनाकर इस शोध पत्र में इन समस्याओं का निराकरण करने का प्रयास किया गया है।

### सन्दर्भ सूची

1. मिश्र, रामदरश. छोटे-छोटे सुख. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2006.
2. दुबे, डॉ.श्यामसुन्दर. कोई खिड़की इसी दीवार से. मेधा बुक्स, 2006.
3. वाजपेयी, कैलाश. शब्द संसार. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2008.
4. मिश्र, डॉ.कृष्ण बिहारी. अराजक उल्लास. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2010.
5. दुबे, डॉ.श्यामसुन्दर. अलोक अनवरत. यश पब्लिकेशन, 2012.